International Journal of Jyotish Research: 2019; 4(1): 36-40

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2019; 4(1): 36-40
© 2019 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 13-11-2018
Accepted: 16-12-2018

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,
नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

Correspondence
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी,
नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

वेदाङ्ग ज्योतिष : एक परिचय

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

सारांश
वेदांग ज्योतिष कहने से ज्योतिष के उस भाग का बोध होता है जो वैदिक ज्योतिष और मानव ज्योतिष से भिन्न है। वेदांग कहते ही, वेद के छ: अंगों का नाम सामने आ जाता है। ये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष। इन्हें 'षडंग' भी कहा जाता है। अंगी वेद है और अंग वेदांग है।
किसी भी वस्तु के स्वरूप को जिन अवयवों या उपकरणों के माध्यम से जाना जाता है, उसे अंग कहते हैं। अंग शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी यही है – अंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंङ्गानि। षड् वेदांगों में से चार वेदांग भाषा से सम्बन्धित हैं – व्याकरण, निरूक्त, शिक्षा और छन्द। इन चार वेदांगों से वेद का यथार्थ बोध होता है। कल्प के चार विभाग हैं। श्रौत, गृह्य, धर्म और शुल्ब। इनमें से केवल शुल्ब ही वैज्ञानिक शाखा का प्रतिनिधत्व करता है। षष्ठ अंग है -ज्योतिष। यह वेदांग पूर्णत: वैज्ञानिक, कालविधान कारक तथा वैदिक धारान्तर्गत भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है।

कूट शब्द: वेदांग, कालाश्रित, वैदिक ज्योतिष, सृष्टि प्रक्रिया, यज्ञ, ऋग्वेद, आर्चज्योतिष, चान्द्र दिन, सौर दिन

प्रस्तावना
वैदिक सनातन परम्परा में विदित है कि यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा ईश्वर की उपासना वेद का परम लक्ष्य है। उपर्युक्त यज्ञादि कर्म काल पर आश्रित हैं और इस परम पवित्र कार्य के लिए काल का विधायक शास्त्र ज्योतिषशास्त्र है। अत: इसे 'वेदांग' की संज्ञा दी गई है। वेद किसी एक विषय पर केन्द्रित रचना नहीं है। वेद सर्वविद्या का मूल है। विविध विषय और अनेक अर्थ को द्योतित करने वाली मन्त्र राशि वेदों में समाहित है। केवल ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन या किसी अन्य विषय का ग्रन्थ नहीं है - वेद। अत: वेदों में किसी भी विषय का तारतम्य बद्ध अध्ययन नहीं है। इसीलिए वेदों को उत्स, मूल या आदि तो कह सकते हैं, पर विषय नहीं। भारतीय ज्ञान परम्परा की पुष्टि वेद में निहित है। कोई भी विषय मान्य और भारतीय दृष्टि से संवलित तभी माना जायेगा जब उसकी जड़े वेदचतुष्टय में कहीं न कहीं समाहित हों। अत: ज्योतिष भी वेदों में बीजरूप में दिखलाई पड़ता है। इसी बीज विषय को 'वैदिक ज्योतिष' कहते है।

वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष में अन्तर
प्रायश: विद्वान 'वेदांग ज्योतिष' को ही 'वैदिक ज्योतिष' भी समझ लेने की भूल करते हैं। ऋषियों के अन्त:करण में दृष्ट मन्त्र ज्योतिष के तत्व को धारण किये हुए हैं, तो उसे 'वैदिक ज्योतिष' कहा जाता है, जबकि 'वेदांग ज्योतिष' विषयों को तारतम्य बद्ध तरीके से प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष का कर्ता ऋषि, बीज तो वेद से लेता है पर उसका पल्लवन अपनी बुद्धि और प्रयोग के अनुभव के आधार पर करता है। यही कारण है कि वेदांग ज्योतिष में बहुत कुछ तारतम्यबद्ध लिखा मिलता है। ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती हैं। अत: वेद अपौरूषेय हैं। वेदांग ऋषि बुद्धि से प्रायोगिक या अनुभव के स्तर पर रचित होने के कारण अपौरूषेय है। आधुनिक रूपकों से स्पष्ट करना हो तो इसे
प्रातिभस्फुरण (इंटयुटिव नॉलेज) कह सकते हैं। 'इंटयुटिव नालेज' को पश्चिम जानता है और इलहाम को अरब।
प्राचीनकाल से आज तक वेदों की जितनी प्रकार की व्याख्याएँ हुई है उनसे स्पष्ट होता है वेद को मुख्य दो धाराओं में अब तक जाना गया है। प्रथम धारा वेद की यज्ञपरक व्याख्या करती है एवं दूसरी धारान्तर्गत सृष्टि प्रक्रिया से मानव जीवन पद्धति का सूक्ष्म विवेचन है। यज्ञ ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य है जैसा कि आचार्य लगध ने वेदांग ज्योतिष में लिखा है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता:
काला हि पूर्वा विहिताश्च यज्ञा:।
तस्मादिदं कालनविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद से वेद यज्ञान्।।[1]

वेदों में यज्ञ के जो महत्व बतलाए गए हैं वे वेदविहित समय में ही करने पर फलीभूत होते हैं अन्यथा वे निष्फल या विपरीत फलदायक हो जाते हैं। श्रुति कहती है –

ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा।
यच्च किंचाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वत।।

अर्थात् उपयुक्त नक्षत्र एवं उपयुक्त काल के अभाव में किया गया यज्ञ, कृत्या को समर्पित हो जाता है न कि देवताओं को। अत: यज्ञानुरूप काल का चयन यज्ञ से पूर्व आवश्यक होता है। प्राय: कार्यानुरूप काल का निर्देश भी स्थान- स्थान पर किया गया है। यथा –अग्न्याधान प्रसंग में कहा गया है –

'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे राजन्य आदधीत'[2] इत्यादि।

इसी प्रकार दीक्षा ग्रहण करने हेतु काल का निर्देश हैं –

एकाष्टम्यां दीक्षरेन्। फल्गुनी पूर्णमासे दीक्षरेन्।।[3]

इससे स्पष्ट है कि यज्ञ से पूर्व के उपक्रम भी उचित काल में ही सम्पन्न होने चाहिए। आचार्य लगध ने पग-पग तिथि नक्षत्र, ऋतु एवं अयन आदि की आवश्यकता को देखते हुए काल का प्रतिपादन किया है। कालज्ञान को सर्वाधिक महत्व देते हुए आर्च ज्योतिष में काल की वन्दना की गई है –

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।[4]

ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मण आरण्यक तक ज्योतिष शास्त्र का विवेचन इस बात का परिचायक है कि यज्ञ के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र भी वेद का प्रतिपाद्य विषय है। अन्यथा संवत्सर से लेकर तिथि तक का उल्लेख वेदों में नहीं होता। इन्हीं आधारों पर ज्योतिष शास्त्र के प्रख्यात आचार्य भास्कर ने ज्योतिष शास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है –

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद् वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ।।[5]

इतना ही नहीं भास्कर ने वेद पुरूष के सभी अंगों का उल्लेख करते हुए ज्योतिष शास्त्र को वेद का नेत्र बतलाया है।

वेदांग ज्योतिष की रचना महात्मा लगध ने की थी। उन्होंने ही इसकी रचना करके सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्र को स्वतन्त्र रूप से स्थापित करने का कार्य किया था। महात्मा लगध को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने प्रथम बार ज्योतिषशास्त्र को 'अथ' से 'इति' पर्यन्त तक वर्ण्य विषय बनाया। अत्यन्त सरलता, सहजता और शुचिता के साथ उन्होंने स्वीकार किया कि इन मंत्रों को तपस्या या समाधि के समय हमने ईश्वरीय अवदान के रूप में नहीं पाया है, बल्कि ये समस्त विषय मेरी मनीषा की स्तरीय बौद्धिक उपलब्धियाँ हैं। ये 'स्वचिन्त्य-' हैं। अचिन्त्य और अव्यक्त का स्फूर्त अवतरण नहीं हैं। यदि आर्च ज्योतिष का सम्बन्ध 'दृष्टमंत्रवद्' होता तो उसके साथ विनियोग भी जुड़ा होता। स्पष्ट है कि यह महात्मा लगध की अपनी रचना है। ऋषिपद विश्व का श्रेष्ठतम पद है। ऋषित्व के आगे सब कुछ हेय है, क्योंकि यह अपरिमेय है। एक मंत्र का द्रष्टा ऋषि उतना ही पूज्य है जितना शताधिक मंत्रों का द्रष्टा है। ऋषि युग में लगध ने अपने को महात्मा कहा –

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।
इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।। [6]

काल को सिर झुका कर प्रणाम करके, सरस्वती का अभिवादन करके लगध महात्मा के कालज्ञान को कहने जा रहा हूँ।

इस प्रकार से मास, वर्ष, मुहूर्त्त, उदय, पर्वकाल, दिन, ऋतु, अयन एवं मासादि का व्याख्यान लगध ने किया। इन दोनों श्लोक में लगध का नाम आया है और ऊपर के श्लोक में तो महात्मा उपाधि के साथ आया है। इससे इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता को बल मिलता है कि यह महात्मा लगध की रचना है। इसकी भाषा और विषय से इस (आर्च ज्योतिष) की 'श्रुति मूलकता सिद्ध' होती है।

महात्मा लगध को लेकर दो प्रकार का अनुमान अंग्रेज इतिहासकारों ने खड़ा किया। साथ ही उनके अनुमान से लगध की वास्तविक ऐतिहासिक उपस्थिति को भ्रम या संदेह की दृष्टि से देखने का अवसर मिला। पहला अनुमान था – संस्कृत ग्रन्थों में अपने नाम को लिखने की परम्परा नहीं रही है। सम्भव है किसी अन्य लेखक ने 'लगध' नाम से आर्च ज्योतिष की रचना की हो। दूसरा अनुमान था – 'लगध' शब्द संस्कृत का नहीं है। इन दोनों अनुमानों को निरस्त करने का काम प्रायश: परवर्ती ज्योतिष इतिहासकारों ने किया है। यदि अपना नाम लिखने या ग्रन्थ में डालने की परम्परा नहीं होती तो मन्त्रों और सूक्तों के द्रष्टा ऋषियों का ज्ञान किसी को नहीं हो पाता। विनियोग में ऋषि का नाम अवश्य होता है। भारतीय परम्परा में अपना परिचय देने की परम्परा अपूर्व है। गोत्र, प्रवर, आचार्य के नामोल्लेख के साथ अपना परिचय दिया जाता है। कठिनाई तब आती है जब अंग्रेज इतिहासकार 'ननु न च' करके तथ्यों को झुठलाता है या संदेह के घेरे में डाल देता है। वेबर ने 'लगध' का नाम 'लाट' के रूप में प्रतिपादित कर उन्हें पाँचवीं शताब्दी का ठहराने का प्रयास किया है। ध्येय है वेबर की मानसिकता वेदों और भारतीयों विद्याओं के प्रति अत्यन्त निम्नस्तरीय थी। कतिपय अंग्रेज इतिहासकारों ने लगध को 'लगड़' या 'लगढ़' माना है। 'होमगन्ध' और 'पुष्पगन्ध' की तरह 'लगध' नाम संस्कृत का है। 'र' अक्षर आगम में अग्निबीजक का वाचक है। इसी तरह 'ल' अक्षर पृथ्वी का वाचक है। फलत: जिसके शरीर से हवनाग्नि की सुगंधि निकलती हो उसे रगध (र गंध) और जिसके शरीर से मृत्तिका की सोंधी सुगंधि निकलती हो उसे लगध (ल गंध) कहते हैं। यदि 'वेबर' और 'केर्न' को लगध का अर्थ नहीं समझ में आ रहा हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यदि 'मातृकातत्व' का विवेक हो तो तीरसठ या चौसठ संस्कृत वर्ण अक्षरों का गूढ़ अर्थ ज्ञात हो सकता है।

भारतवर्ष के गौरवास्पद विषयों में वेद-वेदांग वाङ्मय का प्रमुख स्थान है। वेदांगज्योतिषविद्या में और कालगणनापद्धति में अतीव महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले आचार्य लगध को और उन के पंचसंवत्सरमयम् इत्यादि वेदांगज्योतिषग्रन्थ को बहुत कम लोग जानते हैं। किन्तु वैदिकधर्मकृत्यों के कालों के निरूपण में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक और अनुल्लंघनीय माना गया है। अयनचलन के विचार के लिए अत्यन्त उपयोगी करीब ३४०० वर्ष प्राचीन आलेख, जो भूमण्डल के अन्य देशों के ज्योतिषवाङ्मय में सर्वथा अनुपलब्ध है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध होने से कालगणनापद्धति के विषय में इस ग्रन्थ का लौकिक महत्व भी विलक्षण और अद्वितीय है।

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष में प्रतिपाद्य मुख्य विषय

लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिष ग्रन्थ में पाँच वर्षों का युग, माघशुक्लादि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, पर्व, विषुवत्तिथि, नक्षत्र, अधिमास ये विषय प्रतिपादित हैं। श्रौतस्मार्तधर्मकृत्यों में इन की ही अपेक्षा होने से इस वेदांग ज्योतिष ग्रन्थ में इन विषयों का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया हैं।

वैदिक ज्योतिष का जो स्वरूप हमें संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है, उसमें नक्षत्रों, तिथियों, चान्द्रमासों, दोनों विषुवत् और दोनों अयनों का का वर्णन उपलब्ध है और नक्षत्र गणना कृत्तिका नक्षत्र से की गई है जो उस समय वसन्त सम्पात का नक्षत्र था। उपरोक्त विषयों का गणितीय स्वरूप हमें वेदांग ज्योतिष में उपलब्ध होता है जो गणना के द्वारा तिथियों, नक्षत्रों के मान को प्रस्तुत करता है। वेदांग ज्योतिष की गणना के अनुसार ५ वर्षों का एक युग माना गया है जो चान्द्रयुगचक्र कहा जा सकता है। एक सौर वर्ष ३६६ दिनों का माना गया है, इसलिए ५ सौर वर्षों में ३६६ × ५ = १८३० सावन दिन होते हैं। एक युग में ६२ चान्द्रमास और ६० सौर मास होते हैं इस प्रकार ५ वर्ष में २ अधिमास होते हैं। इन २ अधिमासों में ३० तिथियाँ होती है। युग में ६७ नाक्षत्रमास होते हैं। इसमें चन्द्रमा ६७ × २७ = १८०९ नक्षत्रों को पार करता है।

युग का आरम्भ उत्तरायण अथवा दक्षिणायनान्त से होता है, जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों धनिष्ठा नक्षत्र पर होते है और माघमास का आरम्भ होता है। जैसे –

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।7

अर्थात् जब चन्द्रमा और सूर्य एक साथ धनिष्ठा नक्षत्र पर आकाश में होते हैं तभी युग का आदि माघ और उत्तरायण का आरम्भ होता हैं, जो शुक्लपक्ष का आदि और तपमास होता है।

वेदांग ज्योतिष में स्पष्ट है कि तिथि नक्षत्रों के मान केवल चन्द्रमा, सूर्य के मध्यम गतियों की गणना के आधार पर बनाये गये गणितीय नियमों के अनुसार हैं। इससे स्पष्ट है कि नक्षत्रों और तिथियों के अंशात्मक विभाग उस समय तक नहीं किए गये थे। क्योंकि ५ वर्ष के सावन दिनों की संख्या और तिथियों की संख्या का अन्तर करके उसमें पक्ष संख्या से भाग देकर पाक्षिक तिथियाँ प्राप्त की गई हैं, और इसी प्रकार चन्द्रमा के नक्षत्र भोग दिनों में नक्षत्र संख्या से भाग देकर नक्षत्रों का मान उपलब्ध किया हुआ प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि नक्षत्रों के कोणीय मान का कोई निर्देश नहीं है।

वेदांग ज्योतिष में बारह राशियों, सप्ताहों के दिन और ग्रहों के गतियों का कोई उल्लेख नहीं है। नीचे दिए गए तालिका में सौर वर्षों के वास्तविक दिन से वेदांग में पठित चान्द्रमासों और नाक्षत्रमासों के मानों से तुलना करते हैं:-

५ सौर वर्ष = ३६.५२५६३६२ × ५ = १८२६.२८१८१० दिन
६२ चान्द्र मास = २९.५३०५९ × ६२ = १८३०.८९६५ दिन
६७ नाक्षत्रमास = २७.३२१६६ × ६७ = १८३०.५५१२ दिन

महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने वेदांग ज्योतिष के अनुसार निम्नांकित तालिका दी हैं –

१ युग में रविवर्ष =	५ = रविभगण
सौर मास =	६०= सौर दिन = १८००
चान्द्रमास =	६२= चान्द्र दिन = १८६०
क्षय दिन =	३०
सावनदिन =	१८३०
नक्षत्रोदय =	१८३५
चन्द्रभगण =	६७
चन्द्रसावन दिन =	१७६८
एक सौर वर्ष में सावन दिन =	३६६
एक सौर वर्ष में चान्द्र दिन =	३७२
एक सौर वर्ष में नक्षत्रोदय =	३६७
एक से द्वितीय अयन पर्यन्त सौर दिन =	१८०

उपर्युक्त चान्द्र और पंचांगीय व्यवस्था के लिए माने हुए पंचवर्षीय युग में ६२ चान्द्रमासों और वास्तविक पाँच वर्ष के सौर दिवसों में ४.६०९७ का अन्तर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्तरायणारम्भ के दिन जब चन्द्रमा सूर्य एकत्रित हों वहाँ से आरम्भ कर गणना करने पर पाँच वर्ष के अन्त में उत्तरायणारम्भ का दिन ४.६०९७ के पीछे ही होगा और ६ युगों के अन्तर पर यह अन्तर लगभग एक चान्द्रमास तुल्य अर्थात् ४.६०९७ × ६ = २७.६५८२ हो जायेगा। इसलिए ६ वें युग के अन्त में एक अधिमास हो जायेगा, जो पंचांगीय योजना के लिए व्यर्थ होगा। भारतीय ज्योतिष के यशस्वी लेखक पं0 शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार ९५ वर्षों में ९५.२/५ = ३८ अधिमास प्राप्त होंगे। इसलिए वेदांग ज्योतिष के अनुसार ९५ वर्षों में अपेक्षित मासों के अतिरिक्त ३ अधिमास और जुड़ते हैं, जिनको हटा देने पर ही पंचांगीय व्यवस्था शुद्ध हो सकती है। अत: ३२ वर्ष के काल में ६ युग में यदि हम १२ अधिमास कल्पना करें तो कुल ३६ अधिमास हो जायेगा, इसलिए अन्तिम९५ वें वर्ष में एक अधिमास और कम कर देने से ३५ अधिमास होंगे इस व्यवस्था में जिन अधिमासों को ग्रहण करते थे उन्हें संसर्प और जिन अधिमासों का त्याग करते थे उन्हें अंहस्पत्य (क्षयमास) कहते थे। दीक्षित जी का यह भी मत है कि अधिमास तभी जोड़े जाते थे जब उनकी आवश्यकता होती थी। अत: यह कल्पना उचित ही जान पड़ती है।

वेदांग ज्योतिष में दिनमान

वेदांग ज्योतिष में उत्तरायणारम्भ के दिनमान से दक्षिणायनारम्भ के दिन तक की गणना करके सबसे बड़े दिन (दक्षिणायनारम्भ के दिन) में सबसे छोटे दिन (उत्तरायणारम्भ के दिन) को घटाकर उसमें वर्ष के आधे दिन की संख्या में १८३ से भाग देकर लब्धितुल्य दैनिक वृद्धि से मध्यवर्ती दिनों का कालमान लाया गया है। किन्तु दिनमानों का अनुपात २/३ का है, अर्थात् सबसे छोटे दिन का डेढ़ा सबसे बड़ा दिन है, उससे जो चर घटी आती है वह ३५ अंश अक्षांश की होती है। खाल्दिया का अक्षांश भी यही है। इसलिए कुछ यूरोपियन यह मानते हैं कि वेदांग ज्योतिष के समय आर्यों का निवास उत्तर –पंजाब सीमा प्रान्त और कश्मीर तथा अफगानिस्तान में था। यहाँ का अक्षांश ३२ अंश है और किरणवक्री भवनसंस्कार से भी ९ मिनट दिनमान बढ़ सकता है, तथा जल घड़ी के द्वारा कालमापन विधि के व्यवहार से भी कुछ अन्तर सम्भव है। इस प्रकार वेदांग ज्योतिष का विषय शुद्ध भारतीय है उसके लिए दूसरा प्रमाण नक्षत्रों में लग्न की गणना है वेदांग ज्योतिष में कहा गया है कि –

'श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान् प्राग्विलग्नान् विनिर्दिर्शेत्।[8]

अर्थात् धनिष्ठा से गणना कर पूर्व क्षितिज में लगे हुए नक्षत्रों के लग्नों का फल उसमें नहीं दिया गया है, किन्तु आगे चलकर अथर्व ज्योतिष में हम नक्षत्रों का फल देखते हैं और जन्म, सम्पत्ति, विपत्ति, क्षेम, प्रत्यरि, साधक,वध, मैत्र और अतिमैत्र ये नौ संज्ञायें जन्म नक्षत्र से आरम्भ कर बतलाई गयी हैं तथा उनके फल भी नाम के तुल्य ही कहे गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदांग ज्योतिष काल में गणित एवं फलित ज्योतिष की सच्ची नींव पड़ चुकी थी।

बार्हस्पत्य संवत्सर का, क्षयमास का, मेष वृष इत्यादि राशियों का, सौर संक्रान्तियों का, आदित्यवार सोमवार इत्यादि वारों का, सूर्य-चन्द्र ग्रहणों का, मंगल-बुधादि ग्रहों का, वृहस्पति के और शुक्र के उदय और अस्त का भी वेद मन्त्रों में ब्राह्मणग्रन्थों में श्रौतसूत्रों में गृह्यसूत्रों में और धर्मसूत्रों में भी अपेक्षा न होने से लगधप्रोक्त वेदांगज्योतिषग्रन्थ में भी इन विषयों का प्रतिपादन नहीं किया गया है।

वैदिक परम्परा में संवत्सर का अत्यधिक महत्व है। शतपथब्राह्मण में अनेक स्थलों में संवत्सर को प्रजापति बताया गया है। शतपथब्राह्मण में संवत्सर को प्रजापति की प्रतिमा भी कहा गया है। वैदिक, चयनयाग संवत्सर के ही अनुकरण में आधृत दिखाई देता है। अहोरात्र,पक्ष, मास,ऋतु सभी संवत्सर में ही आधृत माने गये हैं। वेद की इसी मान्यता को ध्यान में रखकर ही ज्योतिषी गर्गाचार्य ने भी संवत्सर का स्वरूप निश्चित होने पर ही अयन, ऋतु, मास, पक्ष, नक्षत्र, तिथि और दिन निश्चित हो सकने की और अयनादि कालों में विहित धर्मकृत्य भी ठीक- ठीक समय में हो सकने की की बात बताई है। उन का वचन है –

अयनान्यृतवो मासाः पक्षासत्वृक्षं तिथिर दिनम्।
तत्वतो नाऽधिगम्यन्ते यदाऽब्दो नाऽधिगम्यते।।
यदा तु तत्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधैः।
तदैवैषाममोहः स्यात् क्रियाणां चाऽपि सर्वशः।।[9]

इस स्थिति में वैदिक मूल परम्परा के संवत्सर के वास्तविक स्वरूप का विवेचनात्मक ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

महात्मा लगध द्वारा रचित वेदांग ज्योतिष की चर्चा अर्वाचीन काल में पाश्चात्य संस्कृतविद् कोलब्रूक, मैक्समूलर,याकोबि, वेबर, थिबो इत्यादि लोगों ने भी की है। भारतीय लोगों में शंकर बालकृष्णदीक्षित, लाला छोटेलाल (बार्हस्पत्य), सुधाकर द्विवेदी, बालगंगाधर तिलक, योगेश चन्द्र राय, शामशास्त्री, गोरखप्रसाद, सत्यप्रकाश इत्यादि लोगों ने भी इस ग्रन्थ की चर्चा की है। इस ग्रन्थ का वर्तमान काल में भी वैदिक धर्म के अग्न्याधान- दर्शपूर्णमासादि यज्ञों में और नामकरण – उपनयन विवाहादि संस्कारों में अपेक्षित कालज्ञान के उपयोगी साधन के रूप में प्रयोग हो सकने के विषय में उन लोगों ने सम्यक् विचार नहीं किया है।

वैदिक ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का काल

अब तक जितने स्वनामधन्य मनीषियों ने वेदों के काल का अनुमान लगाया है वह सारा का सारा अनुमान खण्डित होता नजर आ रहा है। उपग्रहों के द्वारा कृष्ण की द्वारकापुरी समुद्र में ढूँढ ली गयी है। सेतुबन्ध रामेश्वरम का अस्तित्व विज्ञान की नजरों में समा चुका है। अत: ५१०० वर्ष का काल तो महाभारत को ही समर्पित हो जायेगा। कोई ऐसा कारण भी नहीं है हम वेद काल या वेदांग काल को ईसा पूर्व १४०० वर्ष का मानें। अत: कालविभाजन की वे सारी मेड़ें स्वयं ध्वस्त होती चली जा रही हैं जिनसे सारी सृष्टि को ईसा पूर्व चार हजार वर्ष के अंदर धकेलने का प्रयास किया गया था। यूरोपियन एकेडमी का चश्मा अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और स्वयं वहीं के वैज्ञानिकों ने बाइबिल की उस मान्यता को निरस्त कर दिया है जिसमें सृष्टि को मात्र छ: हजार वर्ष प्राचीन कहा गया है। यानी ईसा पूर्व का चार हजार वर्ष का समय और ईसा पश्चात् का दो हजार वर्ष का समय। प्रस्तुत शीर्षक में वेदांग या वेद का कालनिर्धारण करना शक्य नहीं है। ध्येय केवल इतना है कि अंग्रेजों द्वारा निर्धारित काल गणना का पुरातात्विक प्रमाणभूत मानदण्ड ईसा पूर्व ३२० वर्ष अन्य प्रमाणों के उपलब्ध हो जाने के कारण ध्वस्त हो चुका है। अब कालगणना का मानदण्ड महाभारत है। महाभारत को मिथक या काल्पनिक ग्रन्थ कह कर पल्ला झाड़ने वाले क्रूर भाषावैज्ञानिक ही हो सकते हैं। महाभारत में विद्यमान ज्योतिष और वेदांग ज्योतिष का भी अन्तर स्पष्ट है।

श्रुति परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। उसके जन्म का अनुमान लिपि परम्परा के माध्यम से नहीं किया जा सकता। अत: सर्वप्रथम काल गणना का मानदण्ड महाभारत पूर्व महाभारत पश्चात् निश्चित करना होगा। यदि काल गणना का मानदण्ड ए.डी. या बी.सी. होगा तो उससे बेहतर है कि हम संस्कृत और वैदिक वांगमय का इतिहास निर्धारित ही न करें। हमें कलियुगाब्द को ऐतिहासिक मानना ही होगा। इस दिशा में हमारे पास तत्कालीन राजाओं को सौ –सौ वर्षीय परम्परायें भी प्राप्त हैं। अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण प्रदत्त शाप कि महाभारत समाप्ति के पश्चात् तीन हजार वर्षों तक तुम पृथ्वी पर विकल घूमते रहोगे यह सिद्ध करता है कि ईसामसीह से पूर्व का तीन हजार वर्ष का समय भारतीय मनीषियों की दृष्टि से फिसल नहीं सकता। हमारे पंचांगों में जो सृष्ट्यादि काल गणना है वह १ अरब, ९५ करोड़, ५८ लाख ८५ हजार, एक सौ वर्ष से आगे बढ़ रही है। इसी का अंतिम चार अंक कल्यब्द है जो ५१०७ या निरन्तर एकोत्तर वर्ष अधिक है। इसी पूरी गणना से आज भी ग्रहगणित होता है।

कुछ ऐसे भी ऋषि हैं, जिन्होंने मन्त्रों के दर्शन किये हैं और अलग से अपनी ज्योतिष संहितायें भी लिखी हैं। ऐसे ऋषियों में भारद्वाज, अगस्त्य, वसिष्ठ आदि प्रमुख हैं। इन ऋषियों ने वेद की ऋचाओं या मंत्रों को पृथक् रखा और स्वकृत रचना को संहिता (ज्योतिष) कहा। एक ही ऋषि का विषयगत यह पार्थक्य अपूर्व है। ज्योतिष संहिताओं की भाषा शैली वेद मंत्रों से सर्वथा पृथक् है। ऋचाओं में दृष्ट तत्व क्यों और कैसे की व्याख्या नहीं करता, जबकि संहिता ग्रन्थों में वर्णित विषय गणित और सूत्रात्मक प्रक्रिया से आबद्ध हैं। इस विषय को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में विद्यमान अरबों प्रकाशवर्ष दूर स्थित किसी पिण्ड को टेलिस्कोप से देखा तो जा सकता है, पर गणितीय प्रक्रिया में उसे ढ़ालने के लिए गणितीय सूत्रात्मक व्यवस्था देनी होती है। यह गणितीय प्रक्रिया मन्त्र आविर्भाव से मनुष्य रचित विषय का अन्तर प्रकट करती है। गणितज्योतिष का ज्ञाता स्नातक अच्छी तरह से जानता है कि यन्त्र दृष्ट और गणितसिद्ध में यथाकाल अन्तर आने लगता है।

वेदांगज्योतिष के गणितीय अवयव[10]

५ वर्ष =	१ युग
५ वर्ष =	५ सूर्य भगण
५ वर्ष =	६० सौर मास
५ वर्ष =	६२ चान्द्र मास
५ वर्ष (६२ चान्द्र मास +५) =	६७ चन्द्र भगण
५ वर्ष =	१८०० सौर दिन
५ वर्ष ६२ चान्द्रमास =	१८६०चान्द्र दिन
५ वर्ष =	१८३०सावन दिन
५ वर्ष (१८३०सावन दिन + ५) =	१८३७भभ्रम (नक्षत्रोदय)
५ वर्ष में उत्पन्न क्षयदिन (१८६०-१८३०) =	(युगक्षयाह)
१ सौर वर्ष में कुल सावन दिन =	३६६ दिन
१ सौर वर्ष में कुल सौर दिन =	३६० दिन
१ सौर वर्ष में कुल चान्द्र दिन =	३७२
१ सौर वर्ष में कुल नक्षत्रोदय =	३६७
१ सौर वर्ष में कुल अयन संख्या =	२
१ अयन में कुल सावन दिन संख्या =	१८३
१ अयन में कुल सौर दिन संख्या =	१८०

१ सौर युग (५ सौर वर्ष में) चन्द्रनक्षत्र संख्या ६७ × २७ नक्षत्र = १८०९ (चन्द्रभुक्तनक्षत्र)

१ युग = १२० सौर पर्व = १२४ चान्द्रपर्व।

१ युग में उत्पन्न ४ अधिपर्व

६० सौरपर्व में उत्पन्न २ अधिपर्व

१ नक्षत्र दिन = १ सावन दिन + ७ कला

१ युग में सूर्य नक्षत्र संख्या ५ × २७ = १३५

१ नक्षत्र भोग में सूर्य १३ दिन १३ घंटा २० मिनट लेता है।

आर्च ज्योतिष

वेदांग ज्योतिष की प्रथम और महत्वपूर्ण रचना है – 'आर्चज्योतिष'। आर्चज्यौतिषम् विश्व की पहली गणितपुस्तक है। ऋग्वेद का 'वेदांगज्यौतिषम्' है 'आर्च ज्यौतिषम्'। इसमें कुल ३६ मन्त्रात्मक श्लोक उपलब्ध हैं। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना के शिल्पी हैं महात्मा लगध। यहीं से प्रारम्भ होता है वेदाङ्ग काल। अनुक्रम पूर्वक विषय का प्रतिपादन यहीं से आरम्भ हुआ है। इस ग्रन्थ को परम्परा प्राप्त अनुश्रवण से आर्चज्योतिष कहा गया है तथा इस ग्रन्थ से यह बात स्पष्ट होती है कि वेद यज्ञ के प्रतिपादन हेतु प्रवृत्त हैं, यज्ञ कालाश्रित हैं, काल ज्योतिषशास्त्र से विधान को प्राप्त करता है ज्योतिष जानने वाला ही यज्ञ को समझता है –

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।

आर्च ज्योतिष का यह उपसंहार श्लोक है। देखने में यह प्रयोजन परक श्लोक लगता है, पर रचनाकार ने इस मंत्र श्लोक से ग्रन्थ का समापन किया है। आर्चज्योतिष का उपसंहार ज्योतिष के ज्ञान और यज्ञ के संधान से हुआ है – 'यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्।' यह प्रयोजन परक यज्ञ ही सिद्ध करता है कि आर्चज्योतिष का प्रतिपाद्य पूर्णत: यज्ञ है।

प्राचीनकाल में किसी भी विषय का शास्त्रत्व सिद्ध होना उसके लिए प्रतिष्ठा का द्योतक होता था। इसीलिए ज्योतिष को कालविधान शास्त्र कहा गया ज्योतिर्विद्या नहीं। आज जैसे प्रतिष्ठा का द्योतक शब्द विज्ञान बना हुआ है उसी तरह से पहले 'शास्त्र' शब्द था। आज लोग अपने विषय की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए उसे विज्ञान से जोड़ने हैं जैसे – गृहविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान या फिर पोलिटिकल साइंसेज आदि। खिचड़ी पकाइये पर विज्ञान कहकर, पोलिटिकल साइंस कह कर। ज्योतिषशास्त्र को ज्योतिर्विज्ञान नाम से प्रचलित करने के पीछे युगधर्म और युग मानसिकता झलकती है। ज्योतिषशास्त्र से श्रेष्ठ कोई दूसरा शब्द इस अनुशासन के लिए अनुकूल हो ही नहीं सकता। विज्ञान केवल प्रतयक्ष या यन्त्र दृष्ट पदार्थों का ज्ञान प्रदान करता है। ज्योतिष शास्त्र भूत –वर्तमान- भविष्य तीनों को प्रस्फुटित करता है। इसीलिए वेदांग ज्योतिष का उपसंहार है 'यज्ञ'। बात यज्ञ पर आकर समाप्त हुई है। इसी प्रवृत्ति वेदांगकाल को वेदकाल का तत्काल अनुवर्ती काल या आसन्न काल मानना पड़ा हैं। आर्च ज्योतिष का महत्वपूर्ण श्लोक है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्।।[11]

यही श्लोक याजुषज्योतिष के चौथे क्रम में वर्णित है और वहाँ 'ज्योतिषं' की जगह 'गणितं' पाठ भेद कर दिया गया है। वस्तुत: यहाँ 'ज्योतिषं' पाठ ही उपयुक्त था 'गणितं' नहीं। इसमें दो कारण हैं – आर्चज्योतिष पूर्ववर्ती है याजुष परवर्ती। अत: गणितं वैकल्पिक है। मूल पाठ 'ज्योतिषं' है। दूसरा कारण है – वेदांगता और शास्त्रत्व ज्योतिष को प्राप्त है केवल गणित को नहीं। तद् वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् कहते ही ज्योतिष से होरा और संहिता आदि अन्य शाखाओं का व्यावर्तन हो जाता है। ज्योतिष में समाविष्ट है गणित और 'शास्त्रत्व' ज्योतिष का है। फलत: पं0 सुधाकर द्विवेदी जी का यह कहना कि 'अत्र गणितं' स्थाने 'ज्योतिषम्' इति पाठो न विशेषार्थप्रद इति' उचित नहीं है। आचार्य श्री विस्मृत हो गये थे कि ज्योतिषं के स्थान पर गणितं आया है। पूर्ववर्ती है 'आर्च' परवर्ती है 'याजुष'। आचार्य सुधाकर द्विवेदी ने याजुष ज्योतिष का भाष्य पहले लिखा और 'आर्चज्योतिष' का बाद में। इसीलिए इस विषय की गंभीरता पर उनका ध्यान नहीं गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वेदांग ज्योतिष - महात्मा लगध
2. तैत्तरीय ब्राह्मण – 1/9
3. ताण्डय ब्राह्मण – 5/ 9/17, तैत्तरीय संहिता – 7/4/8
4. आर्च ज्योतिष (ऋग्वेद ज्योतिष) - 2
5. सिद्धान्तशिरोमणि – श्लोक संख्या – 9
6. आर्च ज्योतिष - 2, 29
7. वेदांग ज्योतिष
8. आर्च ज्योतिष – 9
9. महर्षि गर्ग वचन
10. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय
11. आर्च ज्योतिष – श्लोक -35